जनसत्ता

दबाव और चुनौती

सुप्रीम कोर्ट में जजों की नियुक्ति को लेकर कालेजियम और सरकार के बीच एक बार जिस तरह का गतिरोध देखने को मिल रहा है, वह स्वतंत्र न्यायपालिका के लिए अच्छा संकेत नहीं कहा जा सकता। सरकार और न्यायपालिका के बीच इस तरह का टकराव लोकतंत्र के लिए घातक होता है। लोकतंत्र के महत्त्वपूर्ण स्तंभों- न्यायपालिका और कार्यपालिका के बीच ऐसे विवादों से देश की जनता में अच्छा संदेश नहीं जाता। हाल का ताजा विवाद यह है कि कालेजियम ने सरकार के पास बारह अप्रैल को जिन दो जजों को सुप्रीम कोर्ट में जज बनाने के लिए सिफारिश भेजी थी, वह सरकार ने पुनर्विचार के लिए लौटा दी थी। इनमें एक जज झारखंड हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश अनिरुद्ध बोस हैं और दूसरे गुवाहाटी हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश एएस बोपन्ना हैं। अब कालेजियम ने फिर से इन्हीं दोनों नामों को सरकार के पास इस टिप्पणी के साथ भेजा है कि सरकार ने दोनों न्यायाधीशों की योग्यता, आचरण और निष्ठा के बारे में कोई टिप्पणी नहीं की है। सरकार की ओर से जो आपत्ति आई थी वह इन जजों की वरिष्ठता को लेकर थी। ऐसे में सवाल उठता है कि अगर वरिष्ठता से संबंधित कोई मुद्दा सामने आता है तो उसमें सरकार की मानी जाए या फिर कालेजियम की।

सुप्रीम कोर्ट और उच्च न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति, तरक्की और तबादले संबंधी काम कालेजियम ही देखता है। कालेजियम प्रधान न्यायाधीश सहित पांच वरिष्ठ जजों का समूह होता है। कालेजियम व्यवस्था की शुरुआत 1993 में हुई थी। तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश जेएस वर्मा के नेतृत्व वाली सुप्रीम कोर्ट की नौ सदस्यीय संवैधानिक खंडपीठ ने छह अक्तूबर 1993 को तय किया था कि सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश का रुतबा कार्यपालिका से ऊपर है, इसलिए जजों की नियुक्तियां और तबादले कालेजियम द्वारा ही होने चाहिए। कालेजियम व्यवस्था लाने का मकसद न्यायपालिका को राजनीतिक दखल से मुक्त कर स्वतंत्र बनाना था। लेकिन पिछले दो दशकों में जब-तब ऐसे आरोप भी सामने आए जब कालेजियम व्यवस्था पर सवालिया निशान लगाए गए और कहा गया कि कालेजियम प्रणाली से जजों की नियुक्ति में भाई-भतीजावाद को बढ़ावा मिल रहा है और उच्च न्यायपालिका में नियुक्तियों को लेकर पारदर्शिता नहीं रह गई है। इसी को आड़ बना कर सरकार ने न्यायिक नियुक्तियों में दखल बढ़ाया।

कालेजियम व्यवस्था लागू होने के बाद सामान्य तौर पर यह परंपरा रही कि जजों की नियुक्ति के लिए जो नाम सरकार के पास भेजे जाते थे, उन्हें बिना किसी नुक्ताचीनी या काट-छांट के हरी झंडी दे दी जाती थी। लेकिन पिछले कुछ सालों में सरकार ने कालेजियम की सिफारिशों पर जिस तरह का रुख दिखाना शुरू किया है वह न्यायपालिका के लिए अच्छा संकेत नहीं माना जा रहा। पिछले साल उत्तराखंड हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश केएम जोसेफ के नाम को लेकर सरकार और कालेजियम के बीच लंबा टकराव चला था। हालांकि अंततः झुकना सरकार को पड़ा, लेकिन उनकी वरिष्ठता कम हो गई। यह टकराव परोक्ष रूप से न्यायपालिका को नियंत्रित करने का संकेत था। जजों की नियुक्ति के लिए प्रस्तावित राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग का गठन भी खटाई में पड़ा है। आयोग के गठन के प्रारूप से स्पष्ट है कि जजों की नियुक्तियों में सरकार का पूरा दखल रहेगा। हालांकि न्यायपालिका में जजों की वरिष्ठता और नियुक्ति संबंधी मामलों में सरकार के दखल के उदाहरण पहले भी देखने को मिलते रहे हैं और इसी को खत्म करने के लिए कालेजियम व्यवस्था बनी थी। अगर लोकतंत्र के स्तंभों में संतुलन नहीं बनेगा तो संस्थाएं खतरे में पड़ेंगी। आज न्यायपालिका भी ऐसी ही चुनौती का सामना कर रही है। सवाल है कि तब कैसे वह अपने को स्वतंत्र बनाए रख सकती है!

खुदकुशी की खोह

आर्थिक तंगी, कर्ज का बोझ, पारिवारिक कलह, परीक्षा या प्रेम में विफलता आदि के चलते खुदकुशी की घटनाएं पिछले कुछ सालों में लगातार बढ़ती गई हैं। इसे लेकर अनेक समाज-मनोवैज्ञानिक अध्ययन हो चुके हैं। पर यह सवाल अपनी जगह बना हुआ है कि लोग मानसिक रूप से इतने कमजोर कैसे होते जा रहे हैं कि संघर्ष के बजाय मामूली विफलता के बाद खुदकुशी को आसान विकल्प के तौर पर चुन लेते हैं। हमारा समाज भी इतना आत्मकेंद्रित कैसे होता गया है कि ऐसे परेशान लोगों को किसी तरह का संबल नहीं दे पाता। आइपीएल सट्टे में भारी नुकसान उठाने के बाद वाराणसी और मुरादाबाद में दो लोगों की खुदकुशी ने एक बार फिर इन सवालों को रेखांकित किया है। वाराणसी में जिस व्यक्ति ने आत्महत्या की, उसने अपनी तीन बेटियों को भी जहर खिला दिया। वह रेहड़ी पर कपड़े बेचने का काम करता था। मुरादाबाद के व्यक्ति ने खुद को फांसी लगा ली। आए दिन ऐसी खबरें मिल जाती हैं। इसके पीछे बड़ा कारण शहरी दबाव है। बहुत सारे लोग गांवों, कस्बों, छोटी जगहों से पलायन कर बड़े शहरों में इस उम्मीद के साथ आते हैं कि वे वहां जीवन यापन के कुछ बेहतर साधन तलाश लेंगे, मगर जब विफल होते हैं, तो निराशा में खुदकुशी जैसे कदम उठाते हैं।

आर्थिक तंगी की वजह से जितनी भी आत्महत्याएं होती हैं, उनमें आमतौर पर परिवार पालने के लिए संघर्ष कर रहे लोग होते हैं। उन्हें जीवन की जरूरी चीजें जुटाने के लिए भी काफी संघर्ष करना पड़ता है। वाराणसी के जिस व्यक्ति ने खुदकुशी की उसने अपनी तीन बेटियों को भी जहर दे दिया। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि उस पर उनके पालन-पोषण, पढ़ाई-लिखाई, विवाह आदि को लेकर कितना दबाव रहा होगा। इसी के चलते उसने आसानी से खूब सारा पैसा कमाने की ललक में सट्टेबाजी का रास्ता चुना होगा। मगर वहां भी उसे विफलता मिली, कर्ज में डूबता गया, तो स्वाभाविक रूप से निराश हुआ होगा और अपनी विफलता से पार पाने का रास्ता उसे आत्महत्या में नजर आया होगा। इसी तरह मुरादाबाद वाला व्यक्ति महाराष्ट्र से चल कर किसी उद्यम के सिलसिले में मुरादाबाद आकर बस गया था। उसने भी इसी तरह पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह न कर पाने की वजह से सट्टेबाजी का रास्ता चुना और फिर विफल होने पर खुदकुशी कर ली।

इन दिनों परिवार का भरण-पोषण, शिक्षा, विवाह आदि जैसी जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाना भी बहुत सारे लोगों के लिए मुश्किल होता गया है। खासकर शहरी जीवन में ये जरूरतें कुछ ज्यादा त्रासद रूप में पेश आती हैं। फिर समाज में आर्थिक असमानता और गलत तरीके से धन कमाने की प्रवृत्ति इस कदर बढ़ी है कि संपन्नता हासिल करने की गलाकाट प्रतियोगिता-सी शुरू हो गई है। फिर आर्थिक विषमता दूर करने की व्यवस्थागत चिंता भी अब दिखाई नहीं देती। ऐसे में सामान्य लोगों के लिए जीवन की दुश्वारियां लगातार बढ़ी हैं। गरीब और गरीब होते गए हैं। यही वजह है कि खुदकुशी की ज्यादातर घटनाएं सीमांत किसानों, छोटे और मझोले कारोबारियों में अधिक दिखाई देती हैं। जब किसानों की आत्महत्या की घटनाएं बढ़ी थीं, तब खेती में सुविधाएं बढ़ाने पर जोर दिया गया था, मगर शहरों में रोजमर्रा की जरूरतों के लिए संघर्ष करने वाले लोगों के लिए जीवन संबंधी सुरक्षा के किसी व्यावहारिक उपाय पर अभी तक गंभीरता से विचार नहीं हुआ है। इस दिशा में संजीदगी से सोचने की जरूरत है।

कल्पमेधा

ईश्वर ने तुम्हें सिर्फ एक चेहरा दिया है और दूसरा तुम खुद बना लेते हो।
-शेक्सपियर

वेनेजुएला का गहराता संकट

ब्रह्मदीप अलूने

शावेज की मौत के बाद अमेरिका को उम्मीद थी कि वेनेजुएला से उसके संबंध बेहतर होंगे। लेकिन शावेज के उत्तराधिकारी निकोलस मादुरो ने अमेरिका की इस मंशा पर पानी फेर दिया। हालांकि मादुरो में वह चतुराई नहीं थी जो उन्हें लोगों में लोकप्रिय करे और वे विश्व पटल पर वेनेजुएला का प्रभाव कायम रख सकें। मादुरो ने भी सत्ता के केंद्रीकरण की कोशिशें कीं। लेकिन अंतरराष्ट्रीय बाजार में तेल की घटती कीमत से मादुरो प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, पिछड़ापन, राजनीतिक अस्थिरता, तानाशाही और सैन्य प्रभुत्व से तीसरी दुनिया के देश अभिशिप्त रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद दुनिया की स्थिति में जो सुधारात्मक और सकारात्मक बदलाव की उम्मीदें की गई थीं, वे सही दिशा में आगे नहीं बढ़ सकीं और अंततः महाशक्तियों के प्रभुत्व के मायाजाल से तीसरी दुनिया के देश कभी उबर ही नहीं सके। दरअसल, दक्षिण अमेरिका का खूबसूरत देश वेनेजुएला खनिज संसाधनों से समृद्ध होने के बाद भी महाशक्तियों के हस्तक्षेप और राजनीतिक अदूरदर्शिता के चलते गहरे संकट में फंस गया है। दुनिया के कच्चे तेल के सबसे बड़े केंद्र समझे जाने वाले इस देश की मुद्रा का भारी अवमूल्यन हो चुका है, महंगाई बेतहाशा बढ़ गई है, पानी का गंभीर संकट है, लोग भूखे रहने को मजबूर हैं, सुपर बाजारों पर सरकारी नियंत्रण स्थापित कर दिया गया है जहां महंगा और दूषित खाना बेचा जा रहा है, लोगों के रोजगार छिन गए हैं और लोग दूसरे देशों में भागने को मजबूर हो रहे हैं। अमेरिकी प्रतिबंधों से हालात बिगड़ चुके हैं। वेनेजुएला से तेल खरीदने वाले देशों को अमेरिका ने कड़ी चेतावनी दी है। इनमें भारत भी शामिल है। दूसरी ओर वेनेजुएला ने भारत को प्रस्ताव दिया है कि वह तेल आयात को आसान बनाने के लिए रुपए में भुगतान कर सकता है। विपक्ष विरोध को राजनीतिक हथियार की तरह इस्तेमाल कर रहा है। अमेरिका मादुरो को सबक सिखाना चाहता है तो वहां की सेना सहित रूस-चीन जैसे देश राष्ट्रपति मादुरो के साथ खड़े हैं। वेनेजुएला की सड़कों पर चौबीसों घंटे विरोध प्रदर्शन, हिंसा और आगजनी हो रही है। ऐसे में भी संयुक्त राष्ट्र खामोश है।

किसी भी देश की आंतरिक राजनीति जब महाशक्तियों के हितों से संचालित होने लगे तो समस्या और गहरा जाती है। वेनेजुएला के राष्ट्रपति निकोलस मादुरो साम्यवादी विचारधारा के समर्थक होकर चीन और रूस से दोस्ती को मजबूत किए हुए हैं। वे लोकतांत्रिक प्रक्रिया को धता बता कर सत्ता पर अपना नियंत्रण बनाए रखना चाहते हैं। सेना उनके साथ है। चीन अपने आर्थिक हितों को पूरा कर महाशक्ति बनने का ख्वाब लिए लातिन अमेरिका में भी अपना प्रभाव मजबूत करने में जुटा है। चीन ने वेनेजुएला में भारी निवेश किया है और उसे कर्ज भी दे रखा है। लातिन अमेरिका में अपने पैर मजबूत करने के लिए चीन के लिए यह सबसे मुफीद वक्त और स्थिति है।

वेनेजुएला में विपक्षी नेता ख्वान ग्वाइदो राष्ट्रपति मादुरो को सत्ता से बेदखल करने के लिए देश भर में चरणबद्ध आंदोलन चला रहे हैं। ग्वाइदो को कई देशों का समर्थन हासिल है और अमेरिका ने तो इस विपक्षी नेता को खुल कर वेनेजुएला के राष्ट्रपति के तौर पर मान्यता भी दे दी है। अमेरिका के सुर में सुर मिलाते हुए वेनेजुएला के पड़ोसी राष्ट्रों- ब्राजील, कोलंबिया, चिली, पेरू, इक्वाडोर, अर्जेंटीना और परागवे ने ग्वाइदो को अंतरिम राष्ट्रपति के रूप में मान लिया है। कनाडा भी ग्वाइदो का समर्थन कर रहा है। यूरोपीय संघ (ईयू) वेनेजुएला में स्वतंत्र चुनाव के पक्ष में है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अलग-थलग पड़ते जा रहे मादुरो को अभी रूस, चीन, तुर्की, ईरान, मेक्सिको, बोलिविया और क्यूबा जैसे अमेरिका के विरोधियों का समर्थन हासिल है। जाहिर है, वेनेजुएला के आंतरिक राजनीतिक संकट से दुनिया को हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया है और यही समस्या इस देश के लिए जानलेवा बन गई है।

वेनेजुएला का राजनीतिक इतिहास पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच झूलता रहा है। बदलते दौर में यही उसके लिए घातक साबित हुआ। कच्चे तेल के भंडार वाले इस देश में ह्यूगो शावेज 1998 में नए समाजवादी संविधान के आश्वासन पर चुनाव जीत कर राष्ट्रपति बने थे। वे करीब डेढ़ दशक तक सत्ता पर काबिज रहे। इस दौरान शावेज ने जनता का विश्वास जीतने के लिए लोकलुभावन योजनाओं की शुरुआत कर व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन किया और धीरे-धीरे कार्यपालिका और न्यायपालिका के सारे अधिकारों को राष्ट्रपति के अधीन कर लिया। शावेज ने जिस प्रकार पूरी सत्ता को अपने तक केंद्रित कर देश के मुख्य संस्थानों पर अपना प्रभाव बनाया, उससे देश के लोकतंत्रिक ढांचे को गहरी चोट पहुंची। तेल बेच कर अपनी नब्बे प्रतिशत मुद्रा कमाने वाले इस देश की समस्या अंतरराष्ट्रीय बाजार में तेल की कम होती कीमतों ने बढ़ाई। शावेज ने अल्पकालिक राजनीतिक हितों के चक्कर में ऐसी कोई दीर्घकालीन नीति नहीं बनाई जिससे देश का आर्थिक ढांचा ध्वस्त होने से बचाया जा सकता। शावेज

साम्यवादी शक्तियों के प्रभाव में इतने उत्साह से आगे बढ़े कि उन्होंने अमेरिका के सामने खड़े होने से भी गुरेज नहीं किया। उन्होंने तेल की दुनिया के राष्ट्रों का लगातार नेतृत्व किया, बल्कि अमेरिका को ठेंगा दिखाते रहने का प्रयास भी। अमेरिकी विरोध के चलते ही उन्होंने रूस से लगातार संबंध मजबूत किए और कैरेबियन सागर से पूंजीवाद और अमेरिका को लगातार चुनौती देने का प्रयास किया। यह ह्यूगो शावेज का दुस्साहस ही था कि उन्होंने 2006 में संयुक्त राष्ट्र महासभा में अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश को दुरात्मा कहने से गुरेज नहीं किया था। यह शावेज का ही साहस था कि उन्होंने शिक्षा, स्वास्थ्य और रियायती दरों पर घर देने के लिए समाजवादी मॉडल को अपनाया और इसमें अपना मार्गदर्शक क्यूबा को बनाया। अमेरिकी अर्थव्यवस्था से अपना संबंध धीरे-धीरे खत्म करने के अपने वादे पर खरे उतरते हुए उन्होंने अमेरिकी कंपनियों को वेनेजुएला से अलविदा कहने को मजबूर कर दिया।

शावेज की मौत के बाद अमेरिका को उम्मीद थी कि वेनेजुएला से उसके संबंध बेहतर होंगे। लेकिन शावेज के उत्तराधिकारी निकोलस मादुरो ने अमेरिका की इस मंशा पर पानी फेर दिया। हालांकि मादुरो में वह चतुराई नहीं थी जो उन्हें लोगों में लोकप्रिय करे और वे विश्व पटल पर वेनेजुएला का प्रभाव कायम रख सकें। मादुरो ने भी सत्ता के केंद्रीकरण की कोशिशें कीं। लेकिन अंतरराष्ट्रीय बाजार में तेल की घटती कीमत से मादुरो प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। ऐसे में देश में चल रही लोकलुभावन योजनाओं को जारी रखना उनके लिए आसान नहीं था और यहीं से उनका विरोध शुरू हो गया। इसके साथ महंगाई बढ़ती गई और लोगों का जीवन मुश्किल हो गया।

संकट और तब गहरा गया जब इस साल राष्ट्रपति मादुरो फिर से चुनाव जीत गए। विपक्ष ने धांधली का आरोप लगा कर जहां चुनावों को खारिज कर दिया, वहीं अमेरिका ने इसे शर्मनाक करार दिया। मानवाधिकार के मसले को लेकर ब्राजील, अर्जेंटीना, परागवे और उरुग्वे ने पहले से ही आर्थिक समूह मर्कोसर से वेनेजुएला को बाहर कर रखा है। वेनेजुएला में विपक्ष ने इस चुनाव को मानने से इंकार कर दिया है और कहा है कि वह आगे भी विरोध जारी रखेगा। राष्ट्रपति मादुरो की असंतुलनकारी आक्रामक नीतियां भी इसके लिए काफी हद तक जिम्मेदार रही हैं। दिसंबर 2015 में वेनेजुएला में महंगाई दर एक सौ अस्सी फीसद तक बढ़ गई थी और आर्थिक नीतियों को दुरुस्त करने की बड़ी जरूरत थी। मादुरो ने 2016 में नोटबंदी जैसा कदम उठा कर लोगों की मुश्किलें और बढ़ा दीं। इस समय दुनिया में तेल की कीमतें गिरने से वेनेजुएला की आर्थिक स्थिति चरमरा गई। विदेशी कर्ज बढ़ता जा रहा है।

इस समय जरूरत इस बात की है कि संयुक्त राष्ट्र अपनी ओर से पहल कर सत्ता के दोनों पक्षों को बातचीत की मेज पर लाए। कच्चे तेल की प्राकृतिक धरोहर से आबाद वेनेजुएला के लिए कर्ज देना मुश्किल काम नहीं है, बशर्ते इस देश के राजनीतिक नेतृत्व को राष्ट्रहित में समझाने का प्रयास किया जाए। लेकिन संयुक्त राष्ट्र के इस कार्य में महाशक्तियों के सामरिक और आर्थिक हित रोड़ा बन सकते हैं। वेनेजुएला को किसी मानवीय त्रासदी से बचाने के लिए वैश्विक निकायों और अंतरराष्ट्रीय समुदाय को सोचना चाहिए।

स्वार्थ के रिश्ते

बृजमोहन आचार्य

दुनिया मेरे आगे

एक दिन सोशल मीडिया पर कवि सम्मेलन सुन रहा था। इसमें कई कवि हास्य कविताएं सुना कर श्रोताओं को गुदगुदा रहे थे। साथ ही मंच संचालक और एक कवयित्री के बीच नोंक-झोंक भी चल रही थी। माहौल हास्य का ही बना हुआ था। इस दौरान मंच संचालक ने बीच में ही एक शायर का कलाम सुना दिया था, जिसमें अचानक ही हमारे समाज की एक हकीकत सामने आ गई। साथ ही उस कलाम को भी कवि सम्मेलन में बैठे श्रोताओं और कवियों ने सराहा और बाद में समाज की स्थिति पर कटाक्ष करने लगे। कलाम यह था कि 'चेहरे पर मुस्कान, दिलों में खाई लेकर बैठे है, करने सारे लोग हिसाब-ए-पाई-पाई बैठे हैं, आज वसीयत करने वाले हैं बाबूजी दौलत की, घर में पहली बार सारे भाई इकट्ठे बैठे हैं।'

इन चार लाइनों ने वर्तमान समाज के एक कड़वे हालात को दर्शा दिया था। शायद यही वजह थी कि हास्य का माहौल एकबारगी बदल गया था और श्रोताओं ने तालियां बजा कर खुशी जाहिर की। यह सच है कि अब अपने देश में भी पश्चिमी सभ्यता की तरह एकल परिवारों को ही ज्यादा महत्त्व दिया जाने लगा है। भारतीय संस्कृति की 'वसुधैव कुटुंबकम' की धारणा धीरे-धीरे समाप्त होने लगी है। भारतीय संस्कृति में पहले दादा-दादी, नाना-नानी और चाचा-ताऊ को भी परिवार माना जाता था। लेकिन अब इस आधुनिक संस्कृति में माता-पिता और बच्चे ही परिवार की सीमा में सिमट कर रह गए हैं। इसलिए आज स्थिति यह हो गई है कि बच्चे नानी की कहानियां और दादा-दादी के प्यार से महरूम होने लगे हैं। उनके लिए माता-पिता ही परिवार हैं और इसके आगे लक्ष्मण रेखा है। नहीं तो वह भी जमाना हुआ करता था, जब स्कूलों-कॉलेजों में ग्रीष्मावकाश होता तो नानी के घर जाने की तैयारियां शुरू हो जाती थीं और नानी भी बच्चों का इंतजार करतीं और नई-नई कहानियां सुनाने के लिए पुलिंदा तैयार कर लेती थीं।

एक प्रकार से भारतीय समाज में संयुक्त परिवार ही धुरी हुआ करती थी। वटवृक्ष की तरह यह परिवार फलता-फूलता रहता था और उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होता था। ये सभी किस्से अब एकल परिवार की पनप रही संस्कृति में कहीं गुम हो गए हैं। लेकिन अब गरमी की छुट्टियों में अपने परिवार के लोगों को छोड़ कर कहीं घूमने की योजना बना ली जाती है। संयुक्त परिवारों में एक भाई दूसरे के साथ छांव की तरह रहता था। हर दुख-सुख और पीड़ा में भाई अपने भाई के काम आता था। ऐसे भाइयों को समाज के लोग राम के भाई लक्ष्मण की संज्ञा देते थे।

सारा परिवार बाबूजी की पोटली में समा जाता था। अगर एक भाई को कोई दुख होता था तो वह सभी भाइयों के लिए होता था। लेकिन जब से समाज में संयुक्त परिवारों का विखंडन और एकल परिवारों को बढ़ावा दिया जाने लगा है। हालांकि आज जो लोग एकल परिवारों में रहते हैं और अपनी पत्नी-बच्चों को ही परिवार मानते है, उन्हें भी यह अच्छी तरह से ज्ञात है कि एकल परिवारों से होने वाले नुकसान और संयुक्त परिवार से होने वाले लाभ कितना मायने रखते हैं! मगर समाज में चल रही एकल धारा में वे भी शामिल हो गए हैं। साथ ही महंगाई की वजह से संयुक्त परिवारों पर पड़ते बोझ भी एकल परिवारों को बढ़ावा देने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे हैं। आज हर आदमी अपने और अपने बीवी-बच्चों को आगे बढ़ने को देखते हुए एकल परिवार को महत्त्व देने लगता है, क्योंकि उसे मालूम है कि संयुक्त परिवार में यह सब कुछ संभव नहीं होगा और जो भी वेतन मिल रहा है, उसमें से अधिकांश सबकी जरूरतों में खर्च होता जाता है।

अब अगर किसी भाई को तकलीफ होती है तो दूसरे भाई को याद कर लिया जाता है और बाद में भुला दिया जाता है। एक प्रकार से स्वार्थ के रिश्तों को ही प्राथमिकता दी जाती है। पाश्चात्य देशों में एकल परिवार को महत्त्व दिया जाता है। आज संयुक्त परिवारों के विघटन का मुख्य कारण यह है कि सभी लोग स्वार्थ में डूबे रहते हैं। ऐसे परिवार कम ही नजर आते हैं जो किसी कारणवश एकल तो हो गए हैं, लेकिन तीज-त्योहार और अन्य बड़े मौकों पर एक धागे में पिरोए रहते हैं। सभी को पता है कि संयुक्त परिवार ही वह वटवृक्ष है, जिसकी छांव में बैठने से सुकून मिलता है। लेकिन भागमभाग की जिंदगी और 'मैं और मेरा परिवार' की सोच ने संयुक्त परिवार की प्रथा से लोगों को दूर किया है। समाज में बढ़ते इस विखंडन को देखते हुए किसी ने यह कहा है- 'माता-पिता बूढ़े ही सही, घर में रहने दो, दौलत तो नहीं कमा सकते, लेकिन आपके बच्चों को जीना जरूर सिखा सकते हैं।' अगर जीना सीखने की यह नींव कमजोर हो गई तो संयुक्त परिवार का गढ़ गिरना ही है!

पूंजी की सत्ता

गांधीजी ने कहा था कि मेरे लिए लोकतंत्र का मतलब है कि सबसे कमजोर व्यक्ति को भी उतने ही अवसर मिलें जितने सबसे ताकतवर व्यक्ति को मिलते हैं। लेकिन अपने देश में लोकतंत्र के वर्तमान परिदृश्य में राष्ट्रपिता की यह अपेक्षा कहीं भी पूरी होती नहीं दिख रही। देश में सत्रहवीं लोकसभा का चुनाव चल रहा है। अभी तक जिन 425 सीटों पर चुनाव संपन्न हुए हैं उनमें से ज्यादातर राजनीतिक दलों के प्रत्याशी करोड़पति हैं और इन क्षेत्रों से चुनाव अयोग द्वारा अबतक तीन हजार करोड़ से अधिक की राशि, शराब व अन्य सामग्री जब्त की जा चुकी है। यानी लोकतंत्र पर पैसा तंत्र पूरी तरह हावी है। इसका एक बड़ा कारण राजनीतिक दलों और उद्योगपतियों का अपवित्र गठबंधन है जिसकी वजह से आज धीरे-धीरे देश पूंजीवाद की तरफ अग्रसर होने लगा है। 'एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म' की रिपोर्ट के अनुसार 2014 में जो 543 सांसद निर्वाचित हुए उनमें से 430 करोड़पति हैं यानी करीब 80 फीसद। इस बार भी हम उसी दिशा में आगे बढ़ रहे हैं।

सबसे दुखद तो यह है कि राजनीतिक दलों ने जिन व्यक्तियों को टिकट दिए हैं उनमें एक बड़ा समूह ऐसा है जिसे न अपने क्षेत्र की समस्या की जानकारी है और न राजनीति और नेतृत्व का कोई अनुभव है। ऐसे लोग जब सांसद बन कर संसद में जाएंगे तो क्या अपने क्षेत्र के प्रति न्याय कर पाएंगे? यह गंभीर चिंता का विषय है। संसद में बहस करने वाले सांसदों की संख्या और बहस के स्तर में दिन प्रतिदिन गिरावट देखने को मिल रही है। हाल ही में ब्रिटेन की संसद ने एक कानून बनाया है जिसका नाम जनप्रतिनिधि वापसी कानून है। इसके तहत यदि कोई सांसद कानून के प्रावधान के अनुरूप कार्य न कर रहा हो तो उसे उसके पद से हटाया जा सकता है। ऐसे कानूनों की आवश्यकता अब भारत में भी है ताकि योग्य व्यक्ति ही संसद में रहें!

● *सत्य प्रकाश, चकसाहो, समस्तीपुर, बिहार*

नागरिक कर्तव्य

तेज गर्मी के बावजूद लंबी-लंबी कतारों में लग कर मतदान करने वाले धन्यवाद के पात्र हैं। जब देश के सैनिक इससे भी अधिक गरम माहौल में या शून्य से नीचे के तापमान में अपना कर्तव्य ईमानदारी से निभा सकते हैं, तो क्या हम अपने राष्ट्र के नीति-नियंता के चयन के लिए आधा-एक घंटा धूप में नहीं रह सकते हैं! वैसे भी हमारे देश में साल भर कभी बारिश तो कभी कड़ाके की ठंड या गर्मी रहती ही है। ऐसे में पांच वर्ष में सिर्फ एकाध घंटा वक्त निकालना हमारे लिए बहुत मुश्किल नहीं होना चाहिए। बात राष्ट्रप्रेम और एक सक्रिय देशभक्त नागरिक बनने की चाहत और मानसिकता की है।

● *कृष्णमोहन चौरसिया, गोरखपुर*

जल संकट

यह कहना कतई गलत नहीं है कि तीसरा विश्व युद्ध पानी के लिए होगा। गर्मी का मौसम आते ही देश के लगभग सभी हिस्सों में जल संकट मंडराने लगता है। मौसम विभाग ने मार्च-अप्रैल में होने वाली बारिश में 27 फीसद की कमी रिकॉर्ड की है। वहीं पिछले दिनों विश्व जल दिवस पर ब्रिटेन के एक गैर सरकारी संगठन वॉटर एड ने अपनी रिपोर्ट में दावा किया है कि भारत में एक अरब आबादी जल संकट का सामना कर रही है। यहां साठ करोड़ लोग पानी की अत्यधिक किल्लत वाले क्षेत्रों में रहते हैं।

गौरतलब है कि विश्व में धरती का लगभग तीन चौथाई भाग जल से घिरा है लेकिन इसमें से 97 फीसद पानी खारा है जो पीने योग्य नहीं है। पीने योग्य पानी की मात्रा सिर्फ तीन प्रतिशत है। इसमें भी दो प्रतिशत पानी ग्लेशियर एवं बर्फ के रूप में है। इस तरह सही मायने में महज एक प्रतिशत पानी मानव के उपयोग के लिए उपलब्ध है। भारत की बढ़ती जनसंख्या की वजह से लगातार पेड़ों की कटाई हो रही है जिससे जलवायु पर खासा प्रभाव पर रहा है। इससे एक वक्त ऐसा आएगा कि हमारी आने वाली पीढ़ी को सिर्फ बोतल बंद पानी का उपयोग करना पड़ेगा।

जिस तरह शिक्षक और माता-पिता अपने बच्चे को अनुशासन का पाठ पढ़ाते हैं उसी प्रकार बच्चों को पानी बचाने के लिए भी प्रेरित करते रहना होगा। हमें नदियों के आस-पास बड़े स्तर पर पेड़ पौधे लगाने के लिए सरकार को जागरूक करना होगा। भारत की प्रमुख समस्या यह है कि वह पानी की बचत कम और बर्बादी अधिक करता है। निरंतर बढ़ते जल संकट से निपटने के लिए हर नागरिक को जागरूक होकर इस समस्या का समाधान करना चाहिए।

● *सूरज कुमार, मोकामा, पटना*

अपना दामन

प्रियंका गांधी ने प्रधानमंत्री को दुर्योधन जैसा अहंकारी बताया है। अच्छा होता वे इस संदर्भ में अपने भाई को भी देख लेतीं। एक बार उनके भाई ने मनमोहन सरकार के अध्यादेश की प्रति सार्वजनिक रूप से अहंकार प्रदर्शित करते हुए फाड़ फैंकी थी। एक अन्य मौके पर उन्होंने कहा था कि वे यदि चाहते तो अपने पिता की हत्या के बाद 1991 में प्रधानमंत्री बन सकते थे, पर उन्होंने नरसिंह राव को बनने दिया था। शायद यह दावा करते समय वे भूल गए कि लोकसभा सदस्य बनने के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष और राज्यसभा की सदस्यता के लिए 30 वर्ष होनी चाहिए, जिसके बगैर कोई प्रधानमंत्री नहीं बन सकता, जबकि 1991 में वे केवल 21 वर्ष के थे। यह भी उनकी पार्टी का अहंकार ही था कि 1998 में उनकी माताजी पार्टी-अध्यक्षा बनीं तो निवर्तमान अध्यक्ष सीताराम केसरी को उनके आसन और डेस्क सहित कांग्रेस-मुख्यालय से उठवा कर बाहर फेंक दिया था।

नरसिंह राव के देहांत के बाद कहीं उनकी अंत्येष्टि दिल्ली में न करनी पड़ जाए, इसलिए उनके परिवारीजनों को मृतक सहित जबरिया दिल्ली से आंध्र भेजा था। इंदिराजी ने पार्टी के वयोवृद्ध नेताओं- मोरारजीभाई, द्वारिका प्रसाद मिश्र, नीलम संजीव रेड्डी, निजलिंगप्पा आदि को कैसा बेइज्जत किया है, यह मिश्र की पुस्तक और कुलदीप नय्यर की 'बिट्वीन द लाइंस' में रिकॉर्ड पर है। इतने अहंकारियों के बावजूद परिवार के बाहर कोई अन्य व्यक्ति अहंकारी दिखे, यह ताज्जुब की बात है।

● *पूनम मित्तल, मोहनपुरी, मेरठ*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com